प्राकृतिक तत्त्व एवं मानव

डॉ. वीना रानी महल्होत्रा

क्षिति जल पावक गगन समीरा।

पञ्चतत्त्व रचि अधम सरीरा।।

अनादि काल से ही मानव का प्राकृतिक तत्त्वों से अटूट सम्बन्ध रहा है। मानव इन्हीं प्राकृतिक तत्त्वों से पैदा हुआ है, इन्हीं तत्त्वों के मध्य रहता है और अन्त में इन्हीं तत्त्वों में विलीन हो जाता है। इसलिए उसे मरने पर (पञ्चत्वं गतः) कहा गया है।

साधारण मानव इन प्राकृतिक तत्त्वों को देखता, छूता तथा अनुभूत करता हुआ भी इन तत्त्वों के प्रति सौन्दर्य तथा उपकार के मर्मस्पर्शी बोध को महसूस नहीं करता वह यह सोचता है कि प्राकृतिक तत्त्व उपयोग्य है तथा वह उनका स्वामी है, वह निरन्तर इन तत्त्वों को जीतने तथा अपने वश में करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह प्रकृतिक तत्त्वों में चेतना शक्ति का अभाव देखता है। उसे इन तत्त्वों में किसी दैवी शक्ति का बोध नहीं होता। वहीं इसके विपरीत हमारे ऋषियों और कवियों ने इन पर अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया। उन ऋषि व कवियों के लिए ये प्राकृतिक तत्त्व हमेशा ही आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। वे इन प्राकृतिक तत्त्वों में ईश्वरीय चेतना, संवेदना, सौन्दर्य गत भावों को ही तलाशते रहे हैं। इन ऋषियों की दृष्टि में मानव के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकृतिक तत्त्वों का प्रवेश रहा है। प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति उनकी इसी श्रद्धा ने वैदिक धर्म को जन्म दिया, अतएव यदि आर्यों के धर्म को प्राकृतिक तत्त्वों से ओतप्रोत कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

प्राकृतिक तत्त्व अपने विभिन्न रूपों के द्वारा मानव से जुड़े है। किस प्रकार मानव उनके विभिन्न भावों व रूपों से आत्मसन्तुष्टि प्राप्त करता है। यह बात उल्लेखनीय है। प्राकृतिक तत्त्वों में पृथ्वी स्थानीय, आकाश स्थानीय व द्युस्थानीय तत्त्व प्राप्त होते हैं। इन सब में सर्वप्रथम हम पृथ्वी स्थानीय तत्त्वों का मानव से क्या सम्बन्ध है, को दर्शायेगे क्योंकि मानव के रहने का आधार यह पृथ्वी और इस के तत्त्व मानव को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। पृथ्वी स्थानीय तत्त्वों में पृथ्वी मानव के जीवन में महत्त्वपूर्ण है। इसी पृथ्वी पर ही नदी, पर्वत, अग्नि, औषधि, वनस्पति पशु एवं पक्षी निवास करते हैं। इन सब का आधार भी पृथ्वी ही है। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में पृथ्वी की महत्ता का विशद विवरण प्राप्त होता है, जहाँ पर स्पष्ट रूप से उपर्युक्त सभी तत्त्वों का वर्णन किया गया है।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथिवी विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।। (अथर्ववेद 12/1/27)

अर्थात् जिस (पृथ्वी) पर वृक्ष, वनस्पतियाँ सदा स्थिर होकर खड़ी रहती हैं, सबको धारण करने वाली, (और स्वयं) धारण की गई पृथ्वी की और अभिमुख होकर हम स्तुति करते हैं